OUR PUBLICATIONS

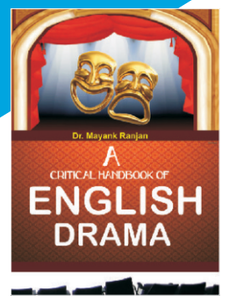

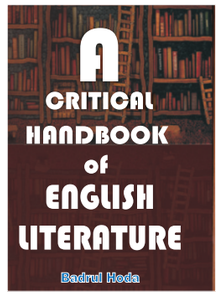

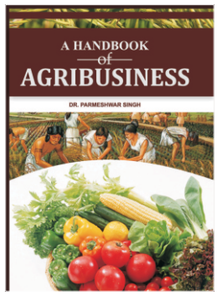

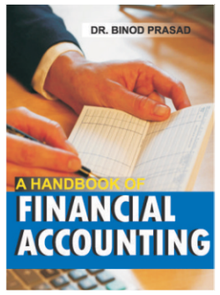

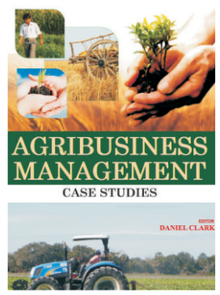

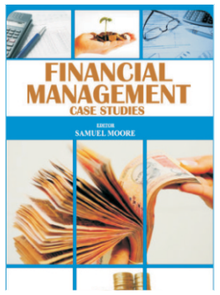

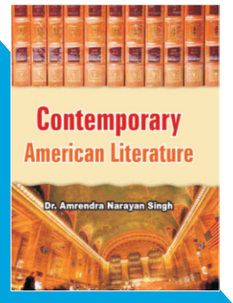

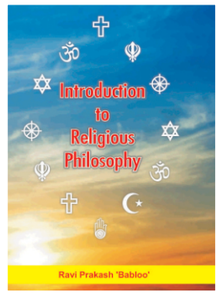

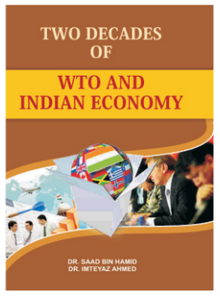

Iobus Press

448, Pocket-V, Mayur Vihar, Phase-1, Delhi-110091 (INDIA)
Ph.: 011-22753916

ISSN 0975-119X

वर्ष 12 अंक 1 जनवरी-फरवरी, 2020 मूल्य ₹ 1500

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

India's Leading Refereed Hindi Language Journal

दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

रीडर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

WZ-724, पालम गांव, नई दिल्ली-110045

वर्ष : 12 **अंक** : 1 ❑ जनवरी–फरवरी, 2020

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

प्रो. लॉरेंस ओएडिजी
वेगेनिंग्न विश्वविद्यालय, नीदरलैंड

डॉ. मार्टिन ग्रिन्डले
नॉटिंग्म विश्वविद्यालय, लंदन

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरवोरोग, ओन्टारियो

डॉ. दया शंकर तिवारी
राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. सुरज नन्दन प्रसाद
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. सी.पी. शर्मा
विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग

डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची

डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका

डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना

डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा

डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

संपादकीय सम्पर्क:
448, पॉकेट–5, मयूर विहार, फेज–I, दिल्ली–110091
फोन : 011–22753916
e-mail : editorialindia@gmail.com; delhijournals@gmail.com
©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

मूल्य: ₹ 1500.00

मुद्रक एवं प्रकाशक निर्मल कुंमार सिंह द्वारा WZ-724, पालम गांव, नई दिल्ली–110045 से प्रकाशित तथा प्राइमा प्रिंटर्स, वाई–56, ओखला, औद्योगिक क्षेत्र, फेस–2, नई दिल्ली से मुद्रित

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

शिक्षक समाज की सर्वाधिक संवेदनशील इकाई है। शिक्षक अपना काम ठीक तरह से नहीं करते- यह आरोप तो सर्वत्र लगाया जाता है। लेकिन यह विचार कोई नहीं करता कि उसे पढ़ाने क्यों नहीं दिया जाता? आए दिन गैर-शैक्षिक कार्यों में इस्तेमाल करता प्रशासन, शिक्षकों की शैक्षिक सोच को, शैक्षिक कार्यक्रमों को पूरी तरह ध्वस्त कर देता है। बच्चों को पढ़ाना-सिखाना सरल नहीं होता और न ही बच्चे फाईल होते हैं। प्रशासनिक कार्यालय और अधिकारीगण शिक्षा और शिक्षकों की लगातार उपेक्षा करते हैं। उन्हें काम भी नहीं करने देते। इसी कारण स्कूली शिक्षा में अपेक्षित सुधार संभव नहीं हो पा रहा है। स्कूली शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए हमें स्कूलों के बारे में अपनी परम्परागत राय को बदलना होगा। अभी स्कूलों को कार्यालय समझकर शिक्षकों को प्रतिदिन अनेक प्रकार की डाक बनाने और आंकड़े देने के लिए मजबूर किया जाता है। इससे बच्चों की पढ़ाई में व्यवधान होता रहता है। बच्चे अपने शिक्षकों से सतत् जुड़े रहना चाहते हैं, विशेषकर प्राथमिक स्तर पर। अत: स्कूलों को कार्यालयीन कामकाज से वास्तव में मुक्त कर प्रभावी शिक्षण संस्थान बनाया जाना चाहिए। शैक्षणिक सुधार में शिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण है। पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यक्रम के अनुरूप प्रभावी शिक्षण, शिक्षकों की योग्यता, सक्रियता और पढ़ाने के कौशल पर निर्भर है। एक शिक्षक, एक साथ कितनी कक्षाओं के कितने बच्चों को भलीभांति पढ़ा सकेगा, इस बारे में गंभीरतापूर्वक विचार करने की जरूरत है। आदर्श रूप में एक शिक्षक अधिकतम 20 बच्चों को ही ठीक प्रकार पढ़ा सकता है। यह भी तब, जब वे भी एक समान स्तर के हों। अभी व्यवस्था यह है कि एक शिक्षक 40 बच्चों को (और वे भी अलग-अलग स्तरों के हैं) पढ़ाएगा। अनेक स्कूलों में तो 70-80 से भी अधिक बच्चों को पढ़ाना पड़ रहा है। ऐसे में शिक्षक मात्र बच्चों को घेरकर ही रख पाते हैं, पढ़ाई तो संभव ही नहीं। शिक्षक बच्चों को पढ़ा भी पाएं, इस हेतु शिक्षक-छात्र अनुपात को व्यावहारिक बनाना होगा।

स्कूली शिक्षा में सुधार के लिए शिक्षण विधियों, प्रशिक्षण और परीक्षण की विधियों में भी सुधार करने की जरूरत है। अभी शिक्षण की विधियां राज्य स्तर से तय की जाती है। कक्षागत शिक्षण कौशलों को या तो नकार दिया जाता है या उन्हें परिस्थितिजन्य मान लिया जाता है। अच्छे प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण का दायित्व कर्तव्यनिष्ठ, योग्य और क्षमतावान प्रशिक्षकों को सौंपा जाना चाहिए। शिक्षकों के प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने, शिक्षण में नवाचारी पद्धतियां विकसित करने सहित परीक्षण (मूल्यांकन) की व्यापक प्रविधियां तय कर उन्हें व्यावहारिक स्वरूप में लागू करने की दिशा में कारगर कदम उठाने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हर प्रदेश में एक 'शैक्षिक संदर्भ एवं स्रोत केन्द्र' विकसित किया जाए। शिक्षा के क्षेत्र में अनेक संस्थाएं कार्यरत हैं। रोजगार और सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए भी शासकीय स्तर पर परियोजनाएं और कार्यक्रम लागू किए गए हैं। मानव विकास के बुनियादी सूचकांक होते हुए भी इनमें तालमेल न होने के कारण इनकी गति अपेक्षित नहीं है। धन की गरीबी से ज्ञान की गरीबी का विशेष सम्बंध है। ग्रामीण दूरस्थ अंचलों में ज्ञान की गरीबी पसरी हुई है। जानकारी के अभाव में वे संसाधनों का उपयोग नहीं कर पाते। अनेक परियोजनाओं के बावजूद उनकी प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक चिकित्सा और बुनियादी रोजगार की प्रक्रियाएं बाधित होती हैं। अब समय आ गया है कि शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के लिए लागू परियोजनाओं को समेकित ढंग से किसी सुनिश्चित क्षेत्र में लागू कर परिणामों की समीक्षा की जाए। अच्छे परिणाम आने पर उन्हें पूरे देश भर में लागू किया जाए। इस प्रकार हम अपने संसाधनों और मानवीय क्षमताओं का बेहतर उपयोग कर सकेंगे जिससे कि शक्षा के गुणात्मक विकास की संभावनाएं बढ़ेगी। स्कूली शिक्षा में सुधार के लिए हमें वर्तमान शैक्षिक उद्देश्यों को भी पुनरीक्षित करना होगा। शिक्षा, महज परीक्षा पास करने या नौकरी/रोजगार पाने का साधन नहीं है। शिक्षा विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास, अन्तर्निहित क्षमताओं के विकास करने और स्वस्थ्य जीवन निर्माण के लिए भी जरूरी है। शिक्षा प्रत्येक बच्चे को श्रेष्ठ इंसान बनने की ओर प्रवृत्त करे, तभी वह सार्थक सिद्ध हो सकती है। कहा भी गया है- 'सा विद्या या विमुक्तये'। अभी पढ़े-लिखे और गैर पढ़े-लिखे व्यक्ति के आचरण और चरित्र में कोई खास अन्तर दिखाई नहीं देता। उल्टे पढ़-लिख लेने के बाद तो व्यक्ति श्रम से जी चुराने लगता है और अनेक प्रकार के दुराचरणों में लिप्त हो जाता है। यह स्थिति एक तरह से हमारी वर्तमान शैक्षिक पद्धति की असफलता सिद्ध करती है। अत: यह जरूरी है कि शिक्षा के उद्देश्यों को सामयिक रूप से परिभाषित कर पुनरीक्षित किया जाए।

शैक्षिक परिवर्तन के लिए शिक्षकों का मनोबल बनाए रखने और उत्साहपूर्वक कार्य करने की इच्छाशक्ति पैदा करने के लिए संगठित प्रयास करने होंगे। अभी शिक्षा व्यवस्था में बालकों और पालकों की भागीदारी न्यूनतम है, इसलिए सभी शैक्षिक कार्यक्रम सफल नहीं हो पाते हैं। स्कूलों में भी जिस प्रकार समर्पित स्वयंसेवकों की आवश्यकता है, वे नहीं हैं। अत: यह आवश्यक है कि श्रेष्ठतम शैक्षिक कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की जानी चाहिए। आज जरूरत इस बात

की है कि किसी प्रकार पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया में परिवर्तन लाने के लिए विद्यालय प्रशासन, शिक्षकों और शैक्षिक कार्यक्रमों में तालमेल बनाया जाए। समुदाय की शैक्षिक आवश्यकताओं को पहचान कर उनकी जरूरतों के अनुरूप निर्णय लेते हुए ऐसा वातावरण बनाने की आवश्यकता है जिसमें व्यावसायिक योग्यता में वृद्धि सुनिश्चित हो। शिक्षा के प्रशासन एवं प्रबन्धन में उत्तरदायी भूमिका निभाने वाले संस्था प्रधानों की नियुक्ति और प्रशिक्षण हेतु शिक्षा विभाग एवं शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे अन्य संगठनों को शीघ्र कारगर कदम उठाना चाहिए। संस्था प्रधानों की भूमिका को सशक्त बनाए बगैर शिक्षा में सुधार की संभावनाएं अत्यन्त क्षीण रहेंगी।

संपादक

इस अंक में

पौराणिक धर्म का विकास: एक दृष्टि–डॉ० चन्द्र भूषण मिश्र 7
नारी उत्थान में डॉ० अम्बेदकर का अवदान–डॉ० डैजी कुमारी 14
राष्ट्रवाद के प्रति स्वामी विवेकानंद का दृष्टिकोण: एक अध्ययन–राहुल कुमार 19
गुप्तोत्तर काल में व्यापार एवं वाणिज्य–साधना कुमारी 22
1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में बिहार की भूमिका–शुभेश कुमार मिश्र 27
स्मृतिकालीन सामाजिक-व्यवस्था एवं स्त्रियाँ–डॉ० महेन्द्र प्रताप यादव 31
महात्मा गांधी का वर्ण एवं जाति के प्रति दृष्टिकोण: एक अध्ययन–डॉ० दिनेश कुमार 56
कहानीकार आरसी प्रसाद सिंह–विनय कुमार 59
नागार्जुन के उपन्यासों की प्रासंगिकता–दर्शना सिंह 63
प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य में नारी की स्थिति–डॉ० अशोक कुमार सिन्हा 68
रामविलास शर्मा की तुलसीदास संबंधी आलोचना के महत्त्व का मूल्यांकन–सुश्री प्रेमवती 73
प्रिय प्रवास: खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य–डॉ० बिभा कुमारी 77
प्रसाद: इतिहास दृष्टि और इतिहासान्वेषण–संजीव शर्मा 82
धूमिल की काव्य में वर्णित राजनीतिक परिदृश्य–विजयश्री कश्यप 91
मनुस्मृति में प्रतिपादित आचार मीमांसा–डॉ० राजवीर शास्त्री 99
श्रीहरिनामामृत व्याकरण में निर्दिष्ट सन्धियाँ–चित्रा भारद्वाज 107
जमीनी हकीकत का बेशर्म उपहास–शत्रुघ्न प्रसाद सिंह 118
बांग्लादेशी घुसपैठ: राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा–स्वदेश सिंह 121
लैंगिक असमानता का वैश्विक और भारतीय संदर्भ–डा० अनुपा देवी 127
लैंगिक विभेद में पितृसत्ता की भूमिका–विकास कुमार 133
परिचारिकाओं के कार्य-संतोष पर स्वबोध का प्रभाव–अंजना सिन्हा 137
भारत में बच्चों के समुचित विकास पर कुपोषण का प्रभाव–कुमारी अर्चना सिंह एवं डॉ० सुनीता कुमारी 142
गांधी के दर्शन में 'अहिंसा'–डॉ० अजीत कुमार वर्णवाल 149
विकास, निर्धनता और असमानता (साहिबगंज जिला झारखण्ड राज्य के विशेष संदर्भ में)–डॉ० निशा कुमारी एवं डॉ० विपिन कुमार 153
लोकमत परिष्कार की भारतीय परम्परा–डॉ० पवन कुमार शर्मा 156
गुप्तकाल की कलाएँ–डॉ० सुनील कुमार तिवारी एवं पूनम धान 163
पेड़ पौधों पर संगीत का प्रभाव: एक विश्लेषण–सुरभि 172
आदिवासी उपन्यास की वैचारिकी का आधार–डॉ० विनोद मीना 177
छायावादी काव्य में राष्ट्रीय चेतना–डॉ० राजमोहिनी सागर 181
अक्करमाशी: अस्तित्व की खोज (हिन्दी में अनुदित मराठी दलित आत्मकथा के विशेष सन्दर्भ में)–आशीष खरे; डॉ. ज्योति गौतम 187
भारतीय इतिहास में व्यापारिक संघर्ष विशेष संदर्भ: ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यापार विस्तार–डॉ0 (श्रीमती) अंजू कुमारी 190
वेदों में विश्वबंधुत्व की भावना–डॉ० अवधेश कुमार यादव 195
विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कवि कर्म–डॉ० जागीर नागर 198

मुस्लिम लीग की राजनीति (1922-1935)–विपिन सहरावत 205
उत्तराखण्ड की मन्दिर स्थापत्य कला (कत्यूरी काल (700-1300 ई.) के विशेष सन्दर्भ में)–डॉ. प्रशान्त कुमार 208
ज्वालामुखी के प्रकार और वितरण–मुकेश कुमार 212
अवधि लोकभाषा और लोकसंस्कृति : एक सिंघावलोकन–डॉ. शैलेश शुक्ला 217
'कोहरे' : टूटते-बनते प्रेम संबधों को यथार्थ–सोमबीर 221
माध्यमिक स्तर के छात्रों के तनाव स्तर पर योग अभ्यासों के प्रभाव का अध्ययन–तिलकराज गौड़; डॉ० कालन्दीलाल चंदानी 224
जल-जीवन-हरियाली का राजनीतिक निहितार्थ - बिहार के संदर्भ में संतुलित पर्यावरण के लिए एक अध्ययन–गरिमा 227
''कम आमदनी वाले महिलाओं का समय-प्रबंधन'' पर एक विशेष अध्ययन–डॉ. कुमारी सुमन 230
आईसीटी के साथ लर्निंग की संस्कृति विकसित करना–आलोक तुली 232
जीएसटी अवलोकन - भारत में माल और सेवा: जीएसटी आईटीसी–समवेदना बिधूड़ी 237
शिक्षा के विकास पर समाजिक मूल्यों का प्रभाव: एक शैक्षिक अध्ययन–डॉ० ईश्वर चन्द्र त्रिपाठी; उमेश कुमार 242
शहरी किंवदंतियाँ; एक समगत अध्ययन–आर. के. अर्चना सदा सुमन टुदी; अमित कुमार; डॉ० रविन्द्रनाथ शर्मा 246
जनसंचार माध्यम : महत्वहीनता का महत्वपूर्ण उत्सव–डॉ. मनीष कुमार मिश्रा; डॉ. उषा आलोक दुबे 249
सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज : किस्सा लोकतंत्र–मिथिलेश कुमार मिश्र 253
क्षेत्रीय विकास नियोजन और सेवा केन्द्रों के संदर्भ में बस्तर संभाग के खनिज संसाधनों का उपयोग–जितेन्द्र कुमार बेदी; डॉ० काजल मोइत्रा 255
धमतरी जिले में गोंड़ जनजाति का आहार उपभोग प्रतिरूप का अध्ययन–डॉ० काजल मोइत्रा; श्रीमती मंजूषा साहू 259
भूमंडलीकरण और संस्कृति या संस्कृति का बाजार–डॉ. धनंजय कुमार दुबे 267
प्राचीन भारत में दास-प्रथा का उद्भव व विकास–अंजू मलिक 273
साहित्य और नाटक का संबंध–डॉ. विकास कुमार; डॉ. मनोज कुमार 276
'मानवाधिकार' वैश्विक चेतना के रूप में विकास–डॉ० सरिता कुमारी 280
सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य मुक्त बाजार व्यवस्था का विश्लेषणात्मक अध्ययन–आलोक कुमार 284
गुरू नानक देव का सामाजिक चिन्तन : एक दार्शनिक विश्लेषण–डॉ० श्याम सुन्दर सिंह 288
गाँधीवादी विचारधारा पर आधारित दबाव समूह–अंदिला रहमान 291
राष्ट्रवाद का परिवर्तित स्वरूप एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–सोनू कुमार 293
यात्रा साहित्य में हिमाचल : संदर्भ और प्रवृत्ति–डॉ० सुनीता शर्मा; श्वेता शर्मा 296
साठोत्तरी उपन्यासों की बदलते परिवेश–प्रो. रमेश के. पर्वती 301
छत्तीसगढ़ के नवगीतकारों के नवगीतों में सामाजिक समस्याएँ–डॉ. स्वामीराम बंजारे; शैलेन्द्र कुमार साहू 304
कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथाओं में स्त्री विमर्श : एक अनुशीलन–डॉ० अखिलेश कुमार वर्मा 308
धर्मवीर भारती कृत उपन्यास 'गुनाहों का देवता' एवं 'सूरज का सातवां घोड़ा' : एक अनुशीलन–डॉ० शिवा श्रीवास्तव 312
जयपुर ज़िले में रोजगार की स्थिति का तुलनात्मक भौगोलिक अध्ययन–अभयवीर सिंह चौधरी 315
अलवर नगरीय क्षेत्र में पेयजलापूर्ति का भौगोलिक अध्ययन–डॉ० रितेश कुमार अग्रवाल 322
भारत में वायु प्रदूषण की समस्या एवं प्रभाव का भौगोलिक अध्ययन–सुनील कुमार गुप्ता 329
विदेशियों यात्रियों की दृष्टि में श्रीलंका–डॉ० अशोक कुमार सोनकर 335
भारत में विश्वविद्यालयीन शिक्षा का विकास एवं प्रभाव–संजय हिरवे 348
टोंक रियासत का ऐतिहासिक अध्ययन (रियासतकाल से वर्तमान तक)–सुरेश मीना; डॉ० शिवचरण चैड़वाल 353
भारत में बागवानी कृषि विकास का भौगोलिक अध्ययन–चिरन्जी लाल रैगर 360
दौसा ज़िले में भूजल संसाधनों का भौगोलिक अध्ययन–दिलीप सिंह अवाना; डॉ० गायत्री यादव 367
भारतीय दर्शन में अनीश्वरवाद का विकास एवं उसकी व्यवहारिता–मनीष कुमार 372
जनसंख्या विस्फोट और आर्थिक विकास–डॉ० बबिता बी० शुक्ला 376

'कामायनी' में भावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण–डॉ. तृप्ता 381
मालती जोशी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व–डायमंड साहू; डॉ० रमणी चंद्राकर 385
इन्टरनेट और मोबाइल के व्यसन से मुक्ति में योग की उपयोगिता–कृष्णाबेन संजयकुमार ब्रह्मभट्ट; डॉ० बिमान पॉल 389
योग अभ्यास और स्मृति: ध्यान आधारित स्मृति वर्धन के उपाय–प्रमोद कुमार; डॉ० पारण गौड़ा 393
साक्षात्कार विधा की संरक्षक : साहित्यिक पत्रिका दस्तावेज–डॉ० मलकीयत सिंह 397

साक्षात्कार विधा की संरक्षक : साहित्यिक पत्रिका दस्तावेज

डॉ० मलकीयत सिंह

सहायक प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय, धर्मशाला, जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश

साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है तथा समाज को सुन्दर बनाने की परिकल्पना है। साहित्य को समाज का दर्पण भी कहा गया है, जिस प्रकार दर्पण को निहार कर मनुष्य अपने सौन्दर्य को परिष्कृत करता है या उसमें अभिवृद्धि करता है उसी प्रकार सहृदय साहित्य में प्रवृत्त होकर अपने आप को परिष्कृत करता है और अपना नैतिक, विवेकाधारित मूल्यांकन करता है। यह साहित्य ही है जो मानव के भीतर नैतिक भय या नैतिक जिम्मेदारी का एहसास करवाता है। यही साहित्य मनुष्य के सौन्दर्यबोध को जंग लगने से बचाता है और व्यक्ति को दूसरों के नजरिए से देखने की क्षमता प्रदान करता है। साहित्य समाज को पशुवृत्ति (उदम्भरि भाव) से ऊपर उठाकर संवेदनशील बनाता है और उसमें 'वसुधैव कटुम्बकम्' तथा प्रेम भाव का संचार करता है। एक साहित्यकार मूलत: आम आदमी से अधिक जागरूक होता है। वह हमारे चारों ओर उपलब्ध तथा घटित हो रही घटनाओं को इस तरह प्रस्तुत करता है कि सामान्य सी लगने वाली वस्तु स्थिति हमें भीतर तक उद्वेलित कर जाती है और हम कवि भाव से सहजता के साथ संप्रेषण कर लेते हैं। वह चाहे 'पत्थर तोड़ती' नारी हो या 'माँ की हड्डी से चिपक - ठिठुर, जाड़े की रात बिताते' बच्चे हों, वह चाहे 'लेवा'[1]। हो या 'पूस की रात'। एक साहित्कार हमें अपनी रचनाधर्मिता द्वारा 'विश्ववेदना' से जोड़ देता है और हमें अपने हृदय का सपंदन महसूस करवा देता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो 'आदिकाल' से लेकर अद्यतन काल तक चली आ रही साहित्य की अनवरत धारा इस बात का प्रमाण है। प्रत्येक काल का साहित्य तत्कालीन सामाजिक प्रवृत्तियों से प्रभावित रहता है।

हिन्दी साहित्य के विकास क्रम में आधुनिक काल का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस काल में साहित्य की बहुत सी विधाएँ आई जैसे, साहित्यिक पत्रकारिता, कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, संस्मरण, यात्रा - वृतांत, अनुवाद, पत्रकारिता, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, पत्र - साहित्य, आलोचना, डायरी, केरीकेचर, व्यंग्य आदि। इन सभी साहित्यिक विधाओं में पत्रकारिता साहित्य अपना अहम् स्थान रखता है क्योंकि साहित्यिक पत्रिकाएँ तात्कालिक रचनाओं व वैचारिक साहित्य को सक्षम मंच प्रदान करती हैं। हिन्दी में आज ऐसी कई साहित्यिक पत्रिकाएँ निकल रही हैं जिनमें 'दस्तावेज' अपनी स्वतन्त्र पहचान रखती हैं।

'दस्तावेज' एक त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका है जिसके सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी हैं। यह बेतिहाता, गोरखपुर (उ0 प्र0) से प्रकाशित होती है। 'दस्तावेज' हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता की उन गिनी - चुनी पत्रिकाओं से है जो अपने आरम्भ से लेकर अद्यतन काल तक निर्वाध गति से निकल रही है। इतने लम्बे समय तक अबाध गति से निकलने वाली शायद ही कोई दूसरी पत्रिका हो। इसके सम्पादक विश्वनाथप्रसाद तिवारी स्वयं एक जाने माने रचनाकार हैं कविता तथा आलोचना पर इनकी विशेष पकड़ है।

'दस्तावेज' उन भारतेन्दुयुगीन पत्रिकाओं की पंक्ति में है जिनके सम्पादक, प्रकाशक और स्वामी एक ही व्यक्ति हुआ करते थे। वही रचनाएँ मांगते थे। प्रैस कापी तैयार करते थे, प्रूफ पढ़ते थे, ग्राहक बनाते थे, विज्ञापन मांगते थे, लिफाफों पर पते लिखते थे, और पोस्ट ऑफिस तक बण्डल ढोकर भी ले जाते थे। वेतनभोगी सम्पादक इस वेदना की कल्पना नहीं कर सकते। आज से पच्चीस वर्ष पहले जब यह पत्रिका शुरू हुई थी तब से आज तक का समय बहुत बदल गया है। बदले परिवेश में रचनाकारों के समक्ष जो भी चुनौतियाँ हैं, वे इस पत्रिका के सामने भी हैं।

'दस्तावेज' के एक अंक से लेकर सौवें अंक तक प्रकाशित साहित्यिक रचनाओं का सांख्यिकि विश्लेषण करें तो इसमें 32 अति महत्त्वपूर्ण सम्पादकीय, 560 के लगभग कवियों की रचनाएँ, 460 के लगभग अति महत्त्वपूर्ण लेख एवं टिप्पणियाँ, 366 के लगभग पुस्तक समीक्षाएँ, लगभग 70 विद्वानों द्वारा बहस एवं परिचर्चा, 64 के आसपास यात्रावृत / संस्मरण / साक्षात्कार / डायरी / व्याख्यानादि, 60 के लगभग चर्चित विद्वानों के विभिन्न व्यक्तियों के लिखे कई पत्र, 20 के लगभग मिथकीय चिन्तन, 'समकालीन भारतीय लेखन' के अन्तर्गत हिन्दीत्तर भाषाओं के 70 से अधिक प्रतिनिधि लेख जिनमें कई विद्वानों की समीक्षाएँ भी हैं। 45 के लगभग 'देशांतर' शीर्षक से 'विदेशी भाषाओं' में रचित साहित्यि रचनाएँ। इसके अतिरिक्त 46 अति महत्त्वपूर्ण अंक जो 'विशेषांक' हैं तथा किसी एक रचनाकार पर केंद्रित हैं। एक हजार से अधिक लेखक इस पत्रिका में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर चुके हैं। जिनमें से कुछ तो नियमित लेखक रहे हैं। संपादक के अनुसार, 'दस्तावेज' एक स्वतंत्र पत्रिका है।

दस्तावेज में साहित्य की विभिन्न विधाओं का प्रकाशन हुआ है जिसमें कविता, आलोचना, साक्षात्कार, पत्र साहित्य, समीक्षाएं आदि प्रमुख है इस पत्रिका में प्रकाशित साहित्य अपने आप में एक पुस्तकालय है जिसमें विभिन्न साहित्यकारों की महत्वपूर्ण रचनाएं संरक्षित हैं इस शोधपत्र में हम दस्तावेज में प्रकाशित प्रमुख साक्षात्कारों पर बात करने जा रहे हैं जो साक्षात्कार रचनाकार के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी संजोए हुए हैं।

'दस्तावेज' में कई महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षरों के साक्षात्कार प्रकाशित हुए हैं जिनसे उनके साहित्य, व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। कई ऐसे नये प्रसंग पाठकों के समक्ष आते हैं जो रोचकता के साथ ज्ञानवर्धक भी हैं। इनमें कई समस्याओं, सम्बन्धों, रचना प्रक्रिया, समकालीन संदर्भो आदि के विषय में प्रश्नोत्तर प्रकाशित हुए हैं। इनमें से कुछेक महत्त्वपूर्ण साक्षात्कारों का संक्षिप्त विवेचन उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है।

अंक 18 में अरविंद कुमार त्रिपाठी व राजेन्द्र रंजन तिवारी द्वारा लिया गया विजयदेवनारायण साही का एक साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है। इस साक्षात्कार में वातचीत 'जायसी' पर केन्द्रित रही है।

उदाहरण, 'मैंने स्वाल दागा'! आप जैसा समाजवादी लेखक 'जायसी जैसे भक्त कवि के पीछे क्यों पड़ा हुआ है। समझ में नहीं आता।

साही – तो क्या जायसी को तुम मुझसे कम समाजवादी समझते हो ? भाई यही तो में तीन दिनों से यहाँ की गोष्ठियों में बोलता आ रहा हूँ – कि जायसी भक्त नहीं प्रेम के कवि हैं। जो ऐसा वैसा कवि नहीं – मुकम्मल तौर पर धर्म निरपेक्षता का कवि है ऐसा कवि जो मनुष्यता की सुरक्षा के लिए मजहब की संकीर्णता को दूर फेंकता है। प्रेम के लिए क्या – क्या पापड़ नहीं बेलता बेचारा। प्रेम की राह का दीवाना यह जायसी, इसलिए समूची भक्तकालीन कविता का अकेला होनहार है जिसने भक्ति और धर्म के आतंक को पार करते हुए अपने काव्य में विशुद्ध प्रेम की प्रतिष्ठा की।'[2]

इस साक्षात्कार में जायसी के विषय में विजयदेवनारायण साही ने शोधपरक तथ्य सामने रखे है। इसमें साही जी के व्यक्तित्व, नयी कविता, नामकरण विषयक चर्चा, प्रयोगवाद आधुनिक साहित्य आदि पर विचार है।

अंक 26 में 'कविता पर एक बात' शीर्षक से नरेन्द्र शर्मा, अज्ञेय, गोबिंद मिश्र, दत यादिवड़ेकर की बातचीत प्रकाशित हुई है। कवि सम्मेलनों के घटते रुझान विषय पर बातचीत करते अज्ञेय का कथन द्रष्टव्य है– 'जो परिस्थितियों में परिवर्तन है वो तो स्पष्ट दिखता ही है, उसके बारे में दो मत नहीं हो सकते लेकिन कवि सम्मेलनों के बारे में जो कहा तो कवियों को हटाया नहीं गया वे हट गये। बल्कि अगर हम यह कहते हैं कि कविसम्मेलनी कवि ने कवि को हटा दिया। सम्मेलनों से तो यह बात भी सच हो सकती थी। बुनियादी बातों में एक बात ध्यान रखने की यह है कि छपाई से पहले कविता का समाज के साथ कैसा सम्बन्ध था और छपाई आने से केसे बदला। मैंने जब कविता लिखना आरम्भ किया था, कविता श्रव्य ही थी और कवि सम्मेलन भी कई स्तरों पर अलग – अलग ढंग के होते थे। सहृदय लोगों के लिए एक तरह के कवि सुना दिये, उनके समाज के बीच में, फिर कम संस्कार वाले लोगों के बीच दूसरी तरह की रचनाएँ सुनाते थे। यह जो परिवर्तन हुआ इसका एक कारण यह भी है कि कविता किताब के लिए लिखी जाने लगी और जरूरी नहीं था कि कवि उसको सुनाये और सुनने वाले उसको ग्रहण कर सकें। पढ़कर भी ग्रहण कर सकता था। कवियों में बहुत अच्छे पढ़ने वाले हो सकते थे, कुछ बहुत बुरे पढ़ने वाले थे। मैं समझता हूँ, उदाहरण के लिए पंत जी का नाम लिया जा सकता है, उन कवियों का जो गा लेते थे लेकिन पढ़ नहीं सकते थे। पंत जी बहुत अच्छा गा लेते थे लेकिन पढ़ नहीं सकते थे। पढ़ने में वो इतना बुरा पढ़ते थे कि पूछना ...।'[3]

अंक 31–32 में श्रीकांत वर्मा, केदारनाथ सिंह और विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की संक्षिप्त सी बातचीत प्रकाशित हुई है जो वर्तमान साहित्य पर केन्द्रित रही है। अंक 38 में अरुण प्रहलाद द्वारा लिया गया रामविलास शर्मा का साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है। अंक 40 में 'दस्तावेज' के दस वर्ष पूरे होने पर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी के साथ अरूणेश नीरन और चितरंजन मिश्र की बातचीत प्रकाशित हुई है। इसमें संपादक से 'दस्तावेज' के सम्पादन सृजन, व साहित्य विषयक अनेक प्रश्नों के उत्तर हैं। अंक 45 में गोविन्द मिश्र से माधुरी छेड़ा की बातचीत प्रकाशित हुई है। इस तम्बी बातचीत में गोबिन्द मित्र ने सर्जना और सामाजिकता तथा व्यक्तिगत प्रश्नों के उत्तर दिये हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है 'माधुरी : जब कहानी या उपन्यास लिखने के लिए अनुभव बीज आपको मिलता है तो तुरंत लिखते हैं आप ? या कुछ समय तक इसके संबंध में कुछ चिंतन चलता है।

गोविन्द्र मिश्र : झगड़ते हैं, कहिए, उससे ... यह जरूर है कि हर रचना को शुरू करते समय लगता है कि एकदम पहली रचना लिख रहे हैं। बनती ही नहीं। लगे रहिए, लगे रहिए। कोफ्त होती है कि लिखना आया नहीं। पेज फाड़ते रहिए फिर लिखते – लिखते रचना ऐसे स्तर पर आ जाती है कि आपसे खुद को लिखवा ले। वह स्थिति जब छू लेता हूँ तो समझ जाता हूँ कि अब यह पूरी हो जाएगी।'[4]

अंक 48 में हरिमोहन शर्मा ने नरेश मेहता का साक्षात्कार प्रस्तुत किया है, इसमें नरेश मेहता के साहित्य, दर्शन, युगबोध, सृजन प्रक्रिया विषय प्रश्न पूछे गये हैं। ऐसा ही एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

'नरेश जी ! आप नयी कविता के दौर के प्रकृति, वैयक्तिक प्रेम, संस्कृति और तत्त्व चिन्तन की ओर उन्मुख कवि रहे हैं। क्या आपकी कविता आज के संघर्षशील युग से अपनी संगति बैठा पाती है ?

श्री नरेश : क्या संघर्ष केवल बाह्य होता है, आंतरिक नहीं ? यथार्थ से मैंने कभी मुँह नहीं मोड़ा। मेरे तीनों प्रबन्ध – काव्य 'संशय की एक रात', 'महाप्रस्थान' और 'प्रवाद – पर्व' क्या युद्ध, राज्य, और व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की समस्या से नहीं जुड़े हैं। वस्तुत: राम – कृष्ण या अन्य मिथक जातीय चेतना की समझ तथा सुविधा के कारण ही लिए जाते हैं जबकि उसमें वर्णित समस्याएँ आधुनिक होती है। गद्य और पद्य की प्रकृति में भिन्नता है। गद्य में यथार्थ को सूचित भी किया जाना होता है। जबकि काव्य में यथार्थ अधिकतर रचित रूप में होता है। कविता में जहाँ तक सांस्कृतिक वातावरण की बहुलता या गहनता का सवाल है वहाँ भी यथार्थ का तात्विक चिंतन ही अधिक मुखरित हुआ रहता है। क्योंकि यथार्थ का कालगत तात्विक चिंतन ही संस्कृति है और उसका देशगत विश्लेषण इतिहास या सभ्यता है। इस दृष्टि से देखने पर यह कहा जा सकता है तात्विक चिंतन होना वायवीय होना नही है बल्कि यथार्थवादी होना होता है।'[5]

अंक 53 में दामोदर पाण्डेय ने शिव प्रसाद सिंह का एक साक्षात्कार प्रस्तुत किया है। इसमें आधुनिक साहित्य और मतवादों पर विस्तार से चर्चा की गई है।

अंक 69 में रमाशंकर द्विवेदी ने अलकराय चौधरी द्वारा लिये गये बंगाली रचनाकार हीरू गांगुली का साक्षात्कार प्रस्तुत किया है।

अंक 72 में प्रकाशित सुरजीत घोष द्वारा लिया गया बंगला लेखक अरुण मित्र का साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है जिसका रूपातर रमाशंकर द्विवेदी ने किया है।

अंक 58 में रमाशंकर द्विवेदी द्वारा लिया गया केदारनाथ अग्रवाल का एक लम्बा साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है। इसमें केदारनाथ अग्रवाल की कविता की रचना प्रक्रिया, काव्यानुभूति, सौंदर्यवोध, शिल्प - बोष, कविता, आंदोलन, समीक्षा, जिजीविषा, विभिन्न लेखकों, कवियों के दुर्लभ संस्मरणों का महत्त्वपूर्ण प्रकाशन किया गया है। ये साक्षात्कार ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। इसमें एक कवि की काव्यविषयक सोच, माहौल और सामाजिकता के दर्शन होते हैं। रमाशंकर द्विवेदी द्वारा पृष्ठे गये समीक्षा विषयक प्रश्न का उत्तर द्रष्टव्य है -

'.....देखिए नाम न लूंगा। समीक्षा या आलोचना कविता के बाद आती है। कृतित्व पहले हैं। में एक कविता लिखूं आलोचक बाद को आएगा, उसके बारे में कहेगा। अच्छी लगेगी या बुरी लगेगी या अपने ढंग से जो भी कहना चाहता है तो पहले कृतित्व है। जब कृतित्व ही उस तरह का नहीं हो रहा है तो आलोचक जो आयेगा, वह भी तो उन्हीं में से आता है, बौद्धिकता लेकर आता है, कम परिपक्व होता है। वह भी दल बनाना चाहता है, जैसे कवि लोग अपना दल बना लेते हैं, वह भी अपना दल बना लेता है, पिच्छलगुए बना लेता है, सराहना करने लगता है। तो यह सब कमजोरियाँ मानवीय कमजोरियाँ हैं। ... आलोचना हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती है। हम तो चौलेंज करके कहते हैं कि हमको दिखाओ वह गुण तब हम मानेंगे, ऐसे कह देने से नहीं होगा कि तुमने यह कह दिया। तो आलोचना का काम भी बड़ा गंभीर काम है और इसके लिए में रामचंद्रशुक्ल का दाद देता हूँ कि उन्होंने सिंसीयरली किया है गलत भी हो तब भी सिंसीयरली किया है।'

बातचीत में हरिवंशराय बच्चन का जिक्र आने पर वार्ता का उदाहरण प्रस्तुत है :--

रमाशंकर : तो आप जब उनसे मिले या जब आपसे मिले तो उनके व्यक्तित्व श के बारे में उनकी कविता के बारे में...।

केदारनाथ : बच्चन 'एज ए मैन ; मैं उनको बहुत पहले से जानता हूँ। इलाहाबाद में वह अग्रवाल विद्यालय में टीचर थे समझे आप और मैं यूनिवर्सिटी में था। वकील हो गया तो मैं भी था, तो एक कवि सम्मेलन में हम बनारस गये। बच्चन भी गये। मैं बहुत कविता वैसी लिखता था ... तब तक तो और भी शायद अच्छी न रही होगी। लेकिन मैं, शमशेर, नरेन्द्र शर्मा, बच्चन सब मोटर से गये। हमको भी लिवा ले गये, हालांकि हम कविता - अविता नहीं करते थे। तो जल्दी - जल्दी में मेरा नाम भी आया - कोई कविता पढ़ी राहत लेकर बैठ गया। हूट नहीं हुआ। गा सकता नहीं था, पढ़ी थी। साहब बच्चन का जलवा मैंने वहाँ देखा। बच्चन ने काव्य - पाठ जैसे किया - जयशंकर प्रसाद भी आए थे उस जमाने में और प्रेमचन्द भी बैठे थे ...।

- यह 1932 की बात है बाबू जी ?
- हाँ बहुत पहले की बात है। तो साश्ब बी 0 ए 0 का मैं विद्यार्थी था, 33 की हो या 32 की, तो साश्ब बच्चन ने जो कविता पढ़ना शुरू किया तो छा गया फिर, उसे, उसको तो जैसे - जिसे कहते हैं कोई दूसरा पढ़ ही नहीं सकता था। उसके पढ़ने के बाद लड़के ले गये हॉस्टल में। वहाँ रात भर उसने सुनाया। हम गये सो देखते रहे। तो बच्चन की कविता का प्रभाव तो मैंने देखा था। मधुशाला ? . मधुशाला और तमाम सुनाया उसने। तो वह अच्छा, और एक बूंद शराब नहीं पीता।

एक बूंद शराब नहीं पीता ?

आज तक नहीं पीया कभी। यह बड़ी भारी खूबी, चरित्र की दृढ़ता है। अपनी तरह की कविता लिखी है, न वह आगे बढ़ पावै तो क्या?,[6]

अंक 63 में उपेन्द्रनाथ अश्क से डॉ0 आसिफ असलम फर्सखी की लम्बी बातचीत प्रकाशित हुई है। 'अश्क' जी अपने बृहद् उपन्यास 'गिरती दीवारें' के 7 वें और अंतिम खण्ड के लिए जरूरी मेटर लेने और लाहौर की यादें ताजा करने के लिए 20 अक्तूबर 1981 में पाकिस्तान की यात्रा पर गये। वहाँ डॉ. आसिफ फर्सखी ने (जो पेशे से डॉक्टर हैं लेकिन शौकिया अंग्रेजी के पत्रकार है) उनसे उर्दू में लम्बा इण्टरव्यू लिया, जो फरवरी 1990 में अंग्रेजी अखबार 'न्यूजलाईन' कराची में छपा। प्रस्तुत इण्टरव्यू उसी का हिन्दी रूपांतर है। अंक 73 में बिन्दु अग्रवाल द्वारा डॉ. नगेन्द्र से लिया गया एक साक्षात्कार 'डॉ0 नगेन्द्र से एक भेंट', शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इसमें नगेन्द्र द्वारा कई महत्त्वपूर्ण विषयों जैसे रसवाद, नयी कविता, नया साहित्य, शिक्षण पद्धति, आलोचना, व्यक्तिगत जीवन आदि पर प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं।

कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं . आपको रसवादी आलोचक माना जाता है। तो क्या आप आज भी काव्य में प्राचीन रूढ़ि के अनुसार रस की स्थिति को मान्यता देते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर में अपने विभिन्न लेखों में दे चुका हूँ। मैं यह अनिवार्य रूप से मानता हूँ कि सृजनात्मक साहित्य का विशेषकर कविता का आध ार तत्त्व 'रस' है, लेकिन रस की मेरी परिभाषा रूढ़िगत नहीं है। इसका मैंने कई व्यवस्था के द्वारा बड़े स्पष्ट शब्दों में खण्डन किया है। अंत में मेरी शब्दावली यही है - 'रूढ़ि मुक्त रस' ... रस कविता का आधार तत्त्व है, इसका अभिप्राय क्या हुआ ? इसका अभिप्राय यह है कि कविता के मूल में किसी न किसी प्रकार से भाव का अंतर्निवेश रहता है। भाव से अभिप्राय है मानव - संवेदना - मानव अनुभूति।'[7]

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

प्र. आपकी विचारधारा पर आक्षेप लगाये जाने पर क्या कभी आपने स्पष्टीकरण दिया है ?

उ0 मैं कभी विवाद में नहीं पड़ा। सर्जनात्मक कार्य में ही मुझे सुख मिलता है। विवाद में पड़कर उत्तर देने में क्षणिक मन: संतोष चाहे मिल जाए, पर अन्त में इसका प्रभाव मन पर अच्छा नहीं पड़ता जो व्यक्ति सर्जनात्मक साहित्य में विवाद में पड़ने पर उसके सर्जनात्मक कृतित्व की हानि ही होती है।'[8]

अंक 84 में शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी, गरिमा श्रीवास्तव तथा जगदीश भगत की निर्मल वर्मा के साथ बातचीत प्रकाशित हुई है। जिसमें उनकी कहानियों, निबन्ध ों में व्यक्ति, अकेलापन, वर्तमान आलोचना, पुरस्कार, साहित्य की भूमिका, साहित्य और राजनीति विषयक कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्मल वर्मा के विचार प्रकाशित हैं।

अंक 86 में 'कविता और भाषा ही मेरा अध्यात्म है' शीर्षक से प्रसिद्ध कवि – आलोचक अशोक वाजपेयी से ओम निश्चल की बातचीत प्रकाशित हुई है। इसमें उनकी काव्ययात्रा, काव्यविषय, काव्य में देहिक बिम्बों की मौजूदगी, पत्रिका संपादन, हिन्दी और मीडिया, सांस्कृतिक संदर्भ, अध्ययन सामग्री, रंगमंचीयता, कम्युनिस्ट विचारधारा विषयक कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर लम्बी बातचीत प्रकाशित हुई है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है ओम निश्चल : कम्युनिस्टों से आपकी नाराजगी क्यों रहती है। उनके किस आचरण से आपको लगता है कि वे गलत है ?

अशोक वाजपेयी : देखिए मेरे तो बहुत सारे मित्र वामपंथी है। इसका भी कभी इतिहास लिखा जाना चाहिए कि ऐसी संस्थाओं की कितनी मदद मैंने की है। लेकिन उनकी बहुत सारी मौलिक स्थापनाओं से मेरी असहमति है। खासकर हिन्दी में जो वामपंथ है, इसने जो अतिचार कर रखा है, उससे भी मेरी घोर असहमति है। तमाम लेखक, कृतियों – उनके प्रति उनके अनुयायी युवा लेखक, प्राय: अनभिज्ञ हैं। बिना जाने – बिना पढ़े सबको खारिज करते है। वह संगठन है बाकी विचारधाराएं, संगठन नहीं, अलग – अलग विचार लोगों के लेकिन वामपंथी एक या दो संगठन। संगठन के बिना इनका विचार चलता नहीं। तो संगठन बने। इन संगठनों का काम गुबह से शाम यही है कि किसको गिराना है, किसको उठाना है। दूसरा इन्होंने पूरे सोवियत संघ, पूरी कम्युनिस्ट व्यवस्था के ध्वस्त होने पर कभी गंभीरता से विचार नहीं किया। उसका कोई प्रमाण नहीं है। तीसरा, यह मानते थे कि मार्क्स ने यह कहा था, अगर आप मैटीरियल फैक्ट्स बदल दे तो चेतना बदल जाएगी। सत्तर वर्ष आपने सोवियत संघ में राज किया। मनुष्य की चेतना नहीं बदली। बल्कि उसी चेतना ने आपको नष्ट कर दिया, ध्वस्त कर दिया। ये सब गहरे मामले हैं। इनसे लेकर आपके गंभीरता होनी चाहिए। सच तो यह है कि किसी वैचारिक शत्रुता के बिना इनका वाम काम ही नहीं रह सकता। यह उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता है, उनको शत्रु चाहिए। पहले अज्ञेय थे फिर निर्मत वर्मा व विद्यानिवास मिश्र हैं। वे नहीं होंगे तो कोई और तैयार हो जाऐंगे। ... मेरे हिसाब से हिन्दी के बहुत सारे वामपंथी अपढ़ वामपंथी भी है, जो कि विलक्षण बात है। मूल ग्रन्थ पढ़ा नहीं है और जो मार्क्सवादी विचार से ही अपना विस्तार किया है, जब सोवियत संघ था, तब और उसके बाद भी – इससे इनका कोई लेना – देना नहीं है।'[9]

अंक 97 में उदयभानु पाण्डेय ने डॉ इंदिरा गोस्वामी (मामोनी राय गोस्वामी) मूलनाम का साक्षात्कार श दुख व्यक्ति और लेखक के परित्र को ऊंचा उठाता है 'शीर्षक से प्रस्तुत किया है। इसमें लेखिका की पुस्तक'A n unifinishedAuto biography ' की खुशवंत सिंह द्वारा की गयी समीक्षा आदि विषयक चर्चा है।

अंक 98 में कमलकिशोर गोपनका की हरिवंश राय बच्चन के साथ एक बातचीत प्रकाशित हुई है, जिसमें कविता – यात्रा, रचना प्रक्रिया आदि के विषय में महत्वपूर्ण विचार प्रकाशित हैं। इसी अंक में कमल किशोर गोयनका द्वारा हरिवंश राय बच्चन की अमर रचना 'मधुशाला' विषयक संस्मरण व साक्षात्कार प्रकाशित हुआ है। उदाहरण द्रष्टव्य है :---

गोयनका : बच्चन जी, 'मधुशाला' असंख्य पाठकों को तथा उसमें उन्होंने अपनी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं का प्रतिरूप देखा है, परन्तु मेरी जिज्ञासा है कि क्या आपको भी अपने जीवन में 'मधुशाला' से शक्ति एवं आनन्द की अनुभूति हुई है ?

बच्चन : मुझे जीवन में कितनी शक्ति, तृप्ति, आनन्द एवं संतुष्टि मिली है, इसके विस्तार में न जाकर मैं केवल एक घटना का उल्लेख करूँगा। ....मैं सन् 1979 में बीमार पड़ा। मेरा ऑपरेशन हुआ स्थिति कुछ इतनी भयानक थी कि मुझे अपनी मृत्यु सामने दिखाई देती थी। मैंने अमिताभ से 'मधुशाला' सुनाने को कहा। अमिताभ ने जब मुझे यह रूबाई सुनाई –

बने पुजारी प्रेमी साकी,
गंगाजल पावन हाला,
रहे फेरता अविरल गति से
मधु की प्यालों की माला,
और लिये जा, और पिये जा,
उसी मंत्र का जाप करें,
में शिव की प्रतिमा बन बैठूं,
मंदिर हो यह मधुशाला।

तब गोयनका जी, मेरी आंखों में शिव की प्रतिमा साकार हो गयी। मैं शिव की प्रतिमा बन बैठूं, शिव को अपने में जी सकुँ, सार्थक हो गया मेरा जीवन। जान सकते हो कितना आनंद मिला होगा मुझे ? कितनी शक्ति मिली होगी ? कितनी तृत्ति मिली होगी ?

गोयनका : मेरी एक और जिज्ञासा है बच्चन जी, क्या 'मधुशाला' का मामला गांधी तक गया था ? कुछ लोग आपको शराबी तथा 'मधुशाला' को मदिरा की कविता बता रहे थे तब क्या गांधी जी ने आप से इसका स्पष्टीकरण मांगा था ?

बच्चन : मामला कुछ ऐसा था कि इन्दौर में अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन का वार्षिकोत्सव था। महात्मागांधी इसके सभापति थे। किसी ने उनसे शिकायत कर दी थी कि आप जिस सम्मेलन के सभापति हो, उस कवि सम्मेलन में मदिरा का गुणगान किया जाए। गांधी जी ने मुझे बुलाया और मुझसे शिकायत की, चर्चा की। कुछ पद भी सुने। मैंने चुनचुन कर कुछ रूबाइयाँ सुनाई। जिनके संकेतार्थ शायद उन्हें सहज ग्राह्य हो सकते थे। एक रूबाई यह थी–

मुसलमान और हिन्दू हैं दो
एक मगर उनका प्याला
एक मगर उनका मदिरालय

एक मगर उनकी हाला।
दोनों न रहते एक न जब तक
मंदिर - मस्जिद में जाते
बैर बढ़ाते मंदिर मस्जिद
मेल कराती मधुशाला।

गांधी जी ने इन रूबाइयों को सुनकर कहा था, 'इसमें तो मदिरा का गुणगान नहीं' गांधी जी का निष्कर्ष सही था। आलोचको की दृष्टि छिछली थी। शराबी का उद्घोष 51 वर्ष तक ध्वनित - प्रतिध्वनित नहीं होता। हाला, साकी के पीछे कुछ और देखना होगा।'[10]

उपयुक्त साक्षात्कारों के विवेचन से इन की प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है वास्तव में किसी रचनाकार का साक्षात्कार उसकी रचनाओं को समझने की एक कुंजी होता है रचना प्रक्रिया में उस रचनाकार की मानसिक स्थिति उस का केंद्रीय भाव उसकी शैली उसका विषय वस्तु या अन्य तरह की सूचनाएं स्वत: ही प्राप्त हो जाती हैं जो एक शोधार्थी के लिए और साहित्य की प्रेमी के लिए उत्सुकता और ज्ञान का विषय होती है अपने पसंदीदा साहित्यकार की जितनी सूचनाएं मिले वह कम होती हैं और इन ज्ञानवर्धक सूचनाओं का आधार साक्षात्कार होता है जिसके माध्यम से हम हैं उनके जीवन के कई पहलुओं का पता चलता है साक्षात्कार विधा आज मीडिया की विधा बन कर भी उभरी है जिसमें विभिन्न विषयों पर विभिन्न विषयों के विद्वानों का साक्षात्कार होता है प्रसारित होता है लेकिन एक साहित्यकार का साक्षात्कार साहित्य जगत में बहुत महत्वपूर्ण है और आज आवश्यकता है कि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित ऐसे साक्षत्कारों का दस्तावेजीकरण किया जाए दस्तावेज पत्रिका ने इस संदर्भ में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और आगे निभा भी रही है।

1. दस्तावेज, सितम्बर 1956, पृ 0 3 1
2. दस्तावेज, जनवरी 1983, पृ0-22 ।
3. दस्तावेज, जनवरी 1985, पृ0-3 -4 ।
4. दस्तावेज, जनवरी 1989, पृ0-22 ।
5. दस्तावेज, जुलाई-सितंबर 1990, पृ0-12 ।
6. दस्तावेज, जनवरी -मार्च 1993, पृ0-58-61 ।
7. दस्तावेज, अक्तूबर-दिसंबर 1996 पृ 80 ।
8. दस्तावेज, अक्तूबर-दिसंबर 1996 पृ 82 ।
9. दस्तावेज, जनवरी -मार्च 2000, पृ0 21 ।
10. दस्तावेज, जनवरी -मार्च 2000, पृ0 11 ।